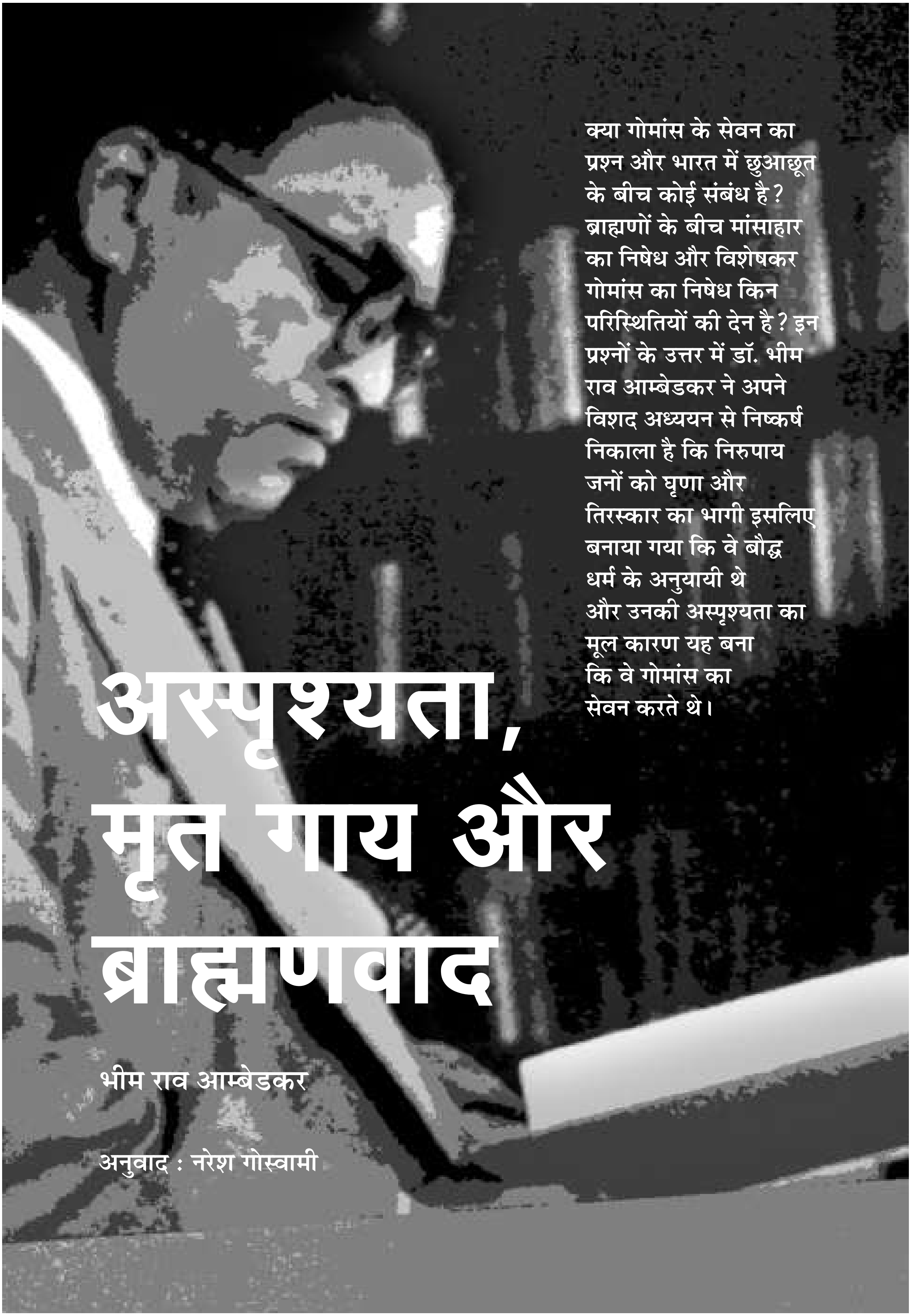


क्या गोमांस के सेवन का प्रश्न और भारत में छुआछूत के बीच कोई संबंध है? ब्राह्मणों के बीच मांसाहार का निषेध और विशेषकर गोमांस का निषेध किन परिस्थितियों की देन है? इन प्रश्नों के उत्तर में डॉ. भीम राव आम्बेडकर ने अपने विशद अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि निरुपाय जनों को घृणा और तिरस्कार का भागी इसलिए बनाया गया कि वे बौद्ध धर्म के अनुयायी थे और उनकी अस्पृश्यता का मूल कारण यह बना कि वे गोमांस का सेवन करते थे।

अस्पृश्यता, मृत गाय और ब्राह्मणवाद

भीम राव आम्बेडकर

अनुवाद : नरेश गोस्वामी

गोमांस सेवन : अस्पृश्यता का मूलाधार[1]

सन् 1910 की जनगणना बताती है कि मोटे तौर पर अस्पृश्य श्रेणी में रखे जाने वाले समुदायों के लिए मृत गाय का मांस मुख्य आहार रहा है, हालाँकि नीचा समझे जाने वाला कोई भी हिंदू-समुदाय गोमांस को छूना भी गँवारा नहीं करता। दूसरी तरफ़ स्थिति यह है कि अस्पृश्य कहा जाने वाला शायद ही कोई समुदाय ऐसा होगा, जिसका मृत गाय के साथ कोई संबंध न हो। कुछ लोग उसका मांस खाते हैं, कुछ उसकी खाल उतारने का काम करते हैं, तो कुछ उसकी खाल और अस्थियों से तरह-तरह की चीज़ें बनाते हैं।

जनगणना आयुक्त का सर्वेक्षण भी अस्पृश्य समुदाय द्वारा गोमांस खाये जाने की तसदीक़ करता है। लेकिन यहाँ बड़ा सवाल यह है : क्या गोमांस सेवन का अस्पृश्यता के उद्भव से भी कोई संबंध है? क्या यह कहा जा सकता है कि पराजित और साधनहीन लोगों[2] को गोमांस खाने के कारण अस्पृश्य मान लिया गया? इस प्रश्न का उत्तर बेहिचक हाँ में दिया जा सकता है। तथ्यों के आधार पर इसका कोई दूसरा उत्तर सम्भव ही नहीं लगता।

तथ्यों के अनुसार इस बारे में पहली बात तो यही है कि अस्पृश्य या इस समुदाय में शामिल किये जाने वाले लोग मृत गाय का मांस खाते हैं और अस्पृश्यता का कलंक इन्हीं समुदायों के माथे पर लगाया जाता है। अस्पृश्यता और मृत गाय के प्रयोग का यह सह-संबंध इतना सघन और स्पष्ट है कि इसे अस्पृश्यता का उद्गम मान लेना लगभग अकाट्य प्रतीत होता है। दूसरी बात, अस्पृश्यों को शेष हिंदुओं से अलग करने वाली अगर कोई चीज़ है तो वह गोमांस का सेवन ही है। हिंदुओं में जिन खाद्य पदार्थों को वर्जित माना जाता है उस पर एक सरसरी नज़र डालने से ज़ाहिर होता है कि आहार के संबंध में हिंदुओं में दो तरह के निषेध प्रचलित हैं। इनमें पहला निषेध मांसाहार से जुड़ा है जो हिंदुओं को सामिषों और निरामिषों में बाँट देता है। दूसरा निषेध गोमांस का सेवन निषिद्ध घोषित करते हुए हिंदुओं को गोमांस खाने वालों और उससे परहेज़ रखने वालों की श्रेणी में बाँट देता है। अस्पृश्यता की दृष्टि से पहला निषेध कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, लेकिन दूसरा निषेध निश्चित ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह स्पृश्यों को अस्पृश्यों से पूरी तरह अलग करता नज़र आता है। स्पृश्यों में चाहे कोई सामिष हो या निरामिष, गोमांस-सेवन के विरोध में दोनों साथ खड़े दिखाई देते हैं। अस्पृश्य इस रवैये के ठीक उलट खड़े दिखते हैं, जिन्हें गाय का मांस खाने में कोई नैतिक संकोच नहीं होता। उनके लिए यह सामान्य आदत का मसला है।[3]

इस संदर्भ में यह कहना कोई दूर की कौड़ी निकालना नहीं होगा कि जिन लोगों को गोमांस के नाम से ही मितली आने लगती है, वे गोमांस खाने वालों को क्योंकर अस्पृश्य न मानें।

इस मामले में इस तरह का क़यास लगाना क़तई ज़रूरी नहीं है कि गोमांस का सेवन करना या इसे वर्जित मानना अस्पृश्यता के उद्भव का मूल कारण था या नहीं। इस नये सिद्धांत को हिंदुओं के

---

[1] आम्बेडकर की 1948 में प्रकाशित रचना द *अनटचेबल्स : हू वेअर दे ऐंड व्हाय दे बिकेम अनटचेबल्स* के दसवें से चौदहवें अध्यायों के मुख्य अंशों से संकलित. यह रचना महाराष्ट्र सरकार द्वारा 1990 में प्रकाशित *डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर : राइटिंग्स ऐंड स्पीचेज़* के सातवें खण्ड में पुनर्मुद्रित की गयी थी. प्रस्तुत लेख में जिन वाक्यों और वाक्य-बंधों के बाद अंतराल आता है उन्हें पद-लोप (...) से तथा सहायक व्याख्या को कोष्ठक द्वारा दर्शाया गया है. लेख की समस्त पाद-टिप्पणियाँ आम्बेडकर के मूल पाठ से उद्धृत की गयी हैं– प्रकाशक.

[2] आम्बेडकर इसी पाठ में थोड़ा पहले यह दलील देते हैं कि आदिम समाज में युद्धों की निरंतरता के कारण जिन आदिवासियों को 'पूरी तरह नष्ट और पराजित' कर दिया गया था, उन्हें कालांतर में 'खण्डित मनुष्य' माना जाने लगा था. आम्बेडकर का मानना है कि 'आदिम हिंदू समाज' में भी एक जगह टिक कर रहने वाले और खण्डित समुदायों का अस्तित्व रहा होगा, जिनमें खण्डित समुदायों को गाँव की सीमा से बाहर बसने के लिए मज़बूर किया गया होगा. आम्बेडकर इसी आधार पर यह तर्क देते हैं कि बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मणवाद के बीच हुए दुर्धर्ष संघर्ष में बौद्ध धर्म के जिन अनुयायियों ने गोमांस का सेवन ज़ारी रखा उन्हें अस्पृश्य माना जाने लगा— प्रकाशक.

[3] हिंदू समुदाय अस्पृश्यों पर गोमांस के सेवन का आरोप मढ़ता रहा है. ऐसे में अस्पृश्यों ने गोमांस का त्याग न करके एक ऐसे दर्शन का विकास किया जो मृत गाय का मांस खाने को वैधता प्रदान करता है. इस दर्शन का सार तत्त्व यह है कि मृत गाय के कंकाल को यों ही छोड़ने के बजाय उसका मांस खा लेना गाय के प्रति ज़्यादा सम्मान प्रदर्शित करता है.

शास्त्र भी प्रश्रय प्रदान करते दिखाई देते हैं। *वेद व्यास स्मृति* का यह पद उन समुदायों की स्पष्ट निशानदेही करता है जिन्हें अंत्यजों की श्रेणी में रखा गया है। यह पद उन कारणों को भी चिह्नित करता है कि इन समुदायों को इस श्रेणी में क्यों शामिल किया गया था।[4]

> 50.12–13: चर्मकारों, भट्ट (सैनिक), भिल्ल, रजक, पुष्कर, नट, व्रात, मेद, चाण्डाल, दास, श्वपक तथा कोलिक आदि और गोमांस का सेवन करने वालों को अंत्यज कहा जाता है।*

सामान्यत: स्मृतिकार कभी अपने सूत्र-सिद्धांतों की व्याख्या करने की जहमत नहीं उठाते। लेकिन यह पद एक अपवाद है, क्योंकि यहाँ वेद व्यास अस्पृश्यता के कारण की भी व्याख्या करते हैं। इसमें यह वाक्यांश— 'और गोमांस का सेवन करने वाले'— बेहद अहम है। इससे पता चलता है कि स्मृतिकारों को इस बात का ज्ञान था कि अस्पृश्यता की जड़ें गोमांस-सेवन में निहित हैं। वेद व्यास की इस सूक्ति के बाद एक तरह से यह दलील रफ़ा-दफ़ा हो जाती है। इस उक्ति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि ज्ञात तथ्यों के अनुरूप होने के कारण वह तर्कसंगत भी है।

अस्पृश्यता के उद्‌भव की पड़ताल करने वाली यह नयी दृष्टि हमारे सामने दो तरह के स्रोत प्रस्तुत करती है। इसमें एक स्रोत ब्राह्मणों द्वारा बौद्धों के विरुद्ध तैयार किये गये घृणा और तिरस्कार के आम माहौल की ओर इशारा करता है, तथा दूसरा स्रोत यह बताता है कि पराजित और साधनहीन लोगों में गोमांस-सेवन की आदत अनवरत रूप से चलती आ रही थी। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, पराजित और साधनहीन लोगों पर अस्पृश्यता थोपने के संदर्भ में पहली परिस्थिति पर्याप्त नहीं लगती, क्योंकि बौद्धों के प्रति ब्राह्मणों की यह घृणा और तिरस्कार एक आमफ़हम बात थी और इससे केवल साधनहीन लोग ही नहीं बल्कि बौद्ध धर्म के सभी अनुयायी प्रभावित होते थे। अस्पृश्यता का यह दंश केवल पराजित और साधनहीन जनों के हिस्से में आया और इसकी वजह यह थी कि उन्होंने बौद्ध होने के अलावा गोमांस का सेवन भी ज़ारी रखा जिससे ब्राह्मणों को गाय के प्रति अपने सद्य:विकसित प्रेम और सम्मान को इसकी तार्किक निष्पत्ति तक पहुँचाने का एक अतिरिक्त आधार और मिल गया। इसलिए निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि निरुपाय जनों को घृणा और तिरस्कार का भागी इसलिए बनाया गया क्योंकि वे बौद्ध धर्म के अनुयायी थे और उनकी अस्पृश्यता का मूल कारण यह बना कि वे गोमांस का सेवन करते थे।

अस्पृश्यता के उद्‌भव में गोमांस-सेवन की भूमिका का यह सिद्धांत कई और सवालों को भी जन्म देता है। ज़ाहिर है कि आलोचक तपाक से पूछेंगे कि हिंदुओं को गोमांस सेवन के नाम से मितली क्यों आती है? क्या हिंदू शुरू से ही गोमांस-सेवन का विरोध करते थे? अगर ऐसा नहीं है तो फिर गोमांस-सेवन के प्रति यह जुगुप्सा किसलिए और कैसे पनपी? क्या अस्पृश्य समुदाय शुरू से ही गोमांस का सेवन करते आ रहे थे? हिंदुओं के साथ उन्होंने भी गोमांस-सेवन की इस आदत को क्यों नहीं छोड़ दिया? क्या अस्पृश्य शुरू से ही अस्पृश्य थे? अगर कभी कोई ऐसा समय था जब अस्पृश्यों को गोमांस का सेवन करने के बावजूद अस्पृश्य नहीं माना जाता था, तो परवर्ती काल में यह अस्पृश्यता के उभार का कारण कैसे बन गया? अगर हिंदू स्वयं गोमांस खाते थे तो उन्होंने इस आदत का परित्याग कब किया? अगर हिंदुओं में अस्पृश्यता गोमांस-सेवन के प्रति उनकी वर्जना की प्रतिक्रिया है तो अस्पृश्यता हिंदुओं के गोमांस-सेवन छोड़ देने के कितने समय बाद अस्तित्व में आयी?

---

[4] काणे, *हिस्ट्री ऑफ़ धर्म शास्त्र,* खण्ड 2, भाग 1 : 71

* प्रस्तुत लेख में उद्‌धृत प्राचीन ग्रंथों के संदर्भों में पहली संख्या खण्ड अथवा अध्याय को तथा बाद की संख्या पद, श्लोक अथवा पृष्ठ-संख्या को इंगित करती है.

क्या हिंदू कभी गोमांस का सेवन नहीं करते थे?



क्या हिंदू कभी गोमांस का सेवन करते थे? कोई भी स्पृश्य हिंदू, वह चाहे ब्राह्मण हो या कुछ और, इस सवाल का उत्तर यही देगा— 'नहीं, कभी नहीं'। एक ख़ास अर्थ में उसकी यह बात सच भी है। हिंदुओं ने बहुत लम्बे समय से गोमांस-सेवन से परहेज़ किया है। अगर कोई स्पृश्य हिंदू अपने उत्तर में सिर्फ़ यही ज्ञापित करना चाहता है तो इस पर विवाद करने की वाक़ई कोई ज़रूरत नहीं है। लेकिन जब ब्राह्मण समुदाय के विद्वान यह तर्क देते हैं कि हिंदू केवल गोमांस का सेवन ही नहीं करते थे बल्कि गाय को हमेशा पवित्र और गोहत्या को निषिद्ध मानते थे तो उनके इस मत को स्वीकार करना असम्भव हो जाता है ...।

हिंदुओं ने बहुत लम्बे समय से गोमांस-सेवन से परहेज़ किया है। अगर कोई स्पृश्य हिंदू अपने उत्तर में सिर्फ़ यही ज्ञापित करना चाहता है तो इस पर विवाद करने की वाक़ई कोई ज़रूरत नहीं है। लेकिन जब ब्राह्मण समुदाय के विद्वान यह तर्क देते हैं कि हिंदू केवल गोमांस का सेवन ही नहीं करते थे बल्कि गाय को हमेशा पवित्र और गोहत्या को निषिद्ध मानते थे तो उनके इस मत को स्वीकार करना असम्भव हो जाता है ...।

ऋग्वेद में इस आशय के पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं कि आर्य भोजन के उद्देश्य से गायों का वध और गोमांस का सेवन करते थे। (10. 86.14) इंद्र का कथन है : 'वे पंद्रह गायों के अलावा बीस बैलों को भोजन के रूप में पकाते हैं'। *ऋग्वेद* में (10. 91.14) कहा गया है कि अग्नि की वेदी पर घोड़ों, बैलों, बाँझ गायों तथा भेड़ों की बलि दी गयी। ऋग्वेद (10. 72.6) से पता चलता है कि गाय का वध सम्भवत: तलवार या कुल्हाड़ी से किया जाता था ...।

तैत्तिरीय ब्राह्मण की काम्येष्टि में तो न केवल साँड़ों और गायों की बलि का विधि-विधान दिया गया है, बल्कि यह तक उल्लेख किया गया है कि किन देवताओं को किस प्रकार के बैलों और गायों की बलि दी जाए। इस विधान के अंतर्गत विष्णु को नाटा साँड़, व्रात के संहारक इंद्र को मुड़े हुए सींगों और माथे पर श्वेत चिह्न वाले बैल, पूषण को श्यामवर्णी गाय तथा रुद्र को लाल रंग की गाय इत्यादि की बलि देने का उल्लेख किया गया है। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में पंचशारदीय-सेवा नामक एक यज्ञ का भी उल्लेख मिलता है जिसका सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व यह था कि इसमें पाँच साल के सत्रह कूबड़-हीन और नाटे बैलों तथा तीन साल की इतनी ही बछियाओं का अग्नि-दाह कराया जाता था ...।

अतिथियों के आगमन पर गोवध की प्रथा इस क़दर प्रचलित हो चुकी थी कि अतिथियों को 'गो-घन' अर्थात् गायों का हत्यारा कहा जाने लगा था। गोवध को रोकने के लिए *आश्वलायन गृह्य सूत्र* (1. 24.25) में गृहस्थों को यह सुझाव दिया गया है कि अतिथि के आने पर शिष्टाचार की बाध्यता से बचने के लिए गायों को खुला छोड़ दिया जाए ...।

गोहत्या तथा गोमांस-सेवन के ऐसे उदाहरण प्रचुर संख्या में मिलते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि इन साक्ष्यों के किस भाग को सच माना जाए? सही बात तो यह है कि *शतपथ ब्राह्मण* तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्रों के जिन अंशों में हिंदुओं को गोहत्या तथा गोमांस-सेवन का विरोधी बताया गया है, उन अंशों को वास्तव में गोहत्या पर प्रतिबंध के बजाय गायों की अंधाधुंध हत्या के विरुद्ध एक उपदेश के रूप में देखा जाना चाहिए। इन उपदेशों से यही पता चलता है कि गोहत्या और गोमांस-सेवन एक आमफ़हम बात हो गयी थी। आर्यों के मूर्धन्य ऋषि याज्ञवल्क्य के आचरण से सिद्ध होता है कि लोग ऐसे उपदेशों पर ध्यान नहीं दे रहे थे। याज्ञवल्क्य ने एक बार कहा था : 'मैं स्वयं इसका



मुखर्जी कहते हैं कि चौपाये पशुओं में शामिल होने के कारण गाय भी अवध्य मानी जाती थी। अभिलेख के कथन का यह पाठ दोषपूर्ण है। ... इसमें सभी चौपाये पशुओं के बजाय केवल ऐसे चौपाये पशुओं की बात की गयी है जिनका कोई उपयोग नहीं किया जाता था या जिन्हें खाया नहीं जाता था। गाय को चौपाये पशुओं की ऐसी श्रेणी में हरगिज़ नहीं रखा जा सकता जिन्हें अनुपयोगी या अभक्ष्य माना जाता हो।

सेवन करता हूँ, बशर्ते यह मुलायम हो'। बौद्ध सूत्रों में उल्लिखित यज्ञों के वर्णन से यह भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि एक समय ऐसा था जब हिंदू गायों का वध करके उनका मांस खाया करते थे। कालक्रम की दृष्टि से इन बौद्ध सूत्रों को वेदों तथा ब्राह्मणों का परवर्ती माना जाता है। इनसे पता चलता है कि गायों तथा पशुओं का बड़े पैमाने पर वध किया जाता था। यहाँ ब्राह्मणों द्वारा धर्म के नाम पर किये जाने वाले इस पशु-वध का समग्र आकलन करना तो सम्भव नहीं होगा, लेकिन बौद्ध साहित्य में वर्णित पशु-वध के प्रसंगों से इसका थोड़ा अंदाज़ा ज़रूर लगाया जा सकता है। इस संबंध में *कुटदंत सुत्त* के एक प्रसंग का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें बुद्ध ब्राह्मण कुटदंत को पशु-बलि का त्याग करने का उपदेश देते हैं। बुद्ध व्यंग्योक्ति की शैली अपनाते हुए वैदिक बलियों और कर्मकाण्डों का सघन चित्र प्रस्तुत करते हैं : 'हे! ब्राह्मण! आगे सुनो, उस यज्ञ के अवसर पर साँड़ों, बकरियों, पक्षियों या थुलथुले सुअरों में किसी की बलि नहीं दी गयी और न ही किसी जीवित प्राणी को मृत्यु की वेदी पर चढ़ाया गया। न यज्ञ-स्थल बनाने के लिए पेड़ काटे गये और न ही बलि-स्थल को चारों ओर से घेरने के लिए दूर्वा घास की कटाई की गयी; न ही दासों, संदेश-वाहकों और भृत्यों को लाठी-डंडों से हाँका गया। काम करते समय उनके चेहरों पर न भय था, न आँसुओं के चिह्न।'

इसके विपरीत, कुटदंत ने अपने हृदय-परिवर्तन के लिए बुद्ध का आभार जताते हुए जो कहा उससे इस प्रकार के यज्ञों में पशु-वध की भयावहता का अंदाज़ा लगाया जा सकता है : 'मैं महात्मा गौतम को अपना पथ-प्रदर्शक स्वीकार करता हूँ, और उनके सिद्धांत व संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं तथागत से आग्रह करता हूँ कि वे मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें। मैं उन्हें आज से जीवनपर्यंत अपना पथ-प्रदर्शक स्वीकार करता हूँ। हे गौतम! मैं सात सौ बैलों, बधिया बैलों, बछियाओं, बकरियों तथा भेड़ों को स्वतंत्र करता हूँ। मैं उन्हें घास चरने, ताज़ा पानी पीने और स्निग्ध बयार में टहलने के लिए मुक्त करता हूँ।'

संयुत्त निकाय (3.1-9) में कोसल के राजा पसेनदि द्वारा कराए गये एक और यज्ञ का वर्णन किया गया है। इसमें पाँच सौ बैलों, पाँच सौ बछड़ों तथा बहुत सी बछियाओं, बकरियों और भेड़ों को बलि-स्थल के स्तम्भ की ओर हाँक कर ले जाने का वर्णन मिलता है।

इस साक्ष्य के बाद कोई संदेह नहीं रह जाता कि एक समय ऐसा था जब ब्राह्मण और ग़ैर-ब्राह्मण, दोनों ही न केवल मांस बल्कि गोमांस का सेवन करते थे।

ग़ैर-ब्राह्मणों ने गोमांस-सेवन का त्याग क्यों किया?

हिंदुओं के विभिन्न वर्गों में भोजन की आदतें उनके मत-मतांतरों की तरह ही स्थिर और स्तरीकृत रही हैं। जिस तरह हिंदुओं का उनके मत-मतांतरों के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है, कुछ उसी तरह उनकी भोजन-संबंधी आदतों का भी निर्धारण किया जा सकता है। धार्मिक जुड़ाव की दृष्टि से हिंदुओं को शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में बाँट कर देखा जाता है। इसी तरह हिंदुओं में या तो मांसाहारी

होते हैं, या फिर शाकाहारी।

लेकिन हमारे सामान्य उद्देश्य के लिए हिंदुओं को शाकाहारी और मांसाहारी के वर्गों में बाँटना पर्याप्त होगा। हाँ, यहाँ यह बात ज़रूर ध्यान में रखी जानी चाहिए कि यह वर्गीकरण अपने आप में पूर्ण नहीं है, क्योंकि यह विभाजन हिंदू समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं करता। इस वर्गीकरण को और व्यापक बनाने के लिए हमें हिंदुओं के मांसाहारी वर्ग को दो उप-वर्गों में और बाँटना पड़ेगा : (1) एक वे जो मांस का सेवन करते हैं. लेकिन गोमांस से परहेज़ करते हैं, और (2), जो गोमांस का सेवन भी करते हैं। अन्य शब्दों में कहा जाए तो भोजन-संबंधी वर्जनाओं के आधार पर हिंदू समाज तीन प्रकार के वर्गों में विभाजित है : (1) शाकाहारी, (2) मांसाहारी परंतु गोमांस न खाने वाले तथा (3) सामान्य मांसाहार के साथ गोमांस का भी सेवन करने वाले। इस वर्गीकरण के समांतर हिंदुओं में तीन प्रकार के वर्ग देखे जा सकते हैं : (1) ब्राह्मण, (2) ग़ैर-ब्राह्मण, और (3) अस्पृश्य। हालाँकि यह विभाजन हिंदू समाज की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से तो मेल नहीं खाता लेकिन वह मौजूदा तथ्यों की एकदम सीध में खड़ा है क्योंकि ब्राह्मण[5] ग्रंथों में एक शाकाहारी वर्ग और ग़ैर-ब्राह्मणों में मांसाहारी परंतु गोमांस से परहेज़ रखने वाले तथा अस्पृश्यों में सामान्य मांसाहार के साथ गोमांस का भी सेवन करने वाले वर्ग की उपस्थिति लक्षित की जा सकती है।

अगर कोई इस वर्गीकरण पर थोड़ा रुक कर विचार करे तो उसका इस विभाजन में ग़ैर-ब्राह्मणों की अवस्थिति पर अनिवार्य रूप से ध्यान जाएगा। शाकाहार या मांसाहार के तर्क को समझना कोई मुश्किल काम नहीं है। लेकिन यह बात समझ से परे है कि एक मांसाहारी व्यक्ति को किसी एक प्रकार के मांस अर्थात् गोमांस के सेवन से क्यों दिक़्क़त होनी चाहिए? यह एक ऐसी विसंगति है जो हमसे गहरी पड़ताल की माँग करती है। आख़िर ग़ैर-ब्राह्मणों को क्या पड़ी थी जो उन्होंने गोमांस का सेवन छोड़ दिया? इस गुत्थी को समझने के लिए हमें इस विषय से संबंधित क़ानूनों की पड़ताल करनी होगी। ऐसे प्रसंगानुकूल क़ानून अशोक की सूक्तियों में मिलते हैं या मनु-स्मृति में ...

अशोक के अभिलेखों का अन्वीक्षण करते हुए यह प्रश्न उठ खड़ा होता है : क्या उन्होंने गोहत्या को निषिद्ध घोषित किया था? इस विषय में दो अलग-अलग मत सामने आते हैं। प्रोफ़ेसर विंसेट स्मिथ का मानना है कि अशोक ने गोहत्या पर प्रतिबंध नहीं लगाया था। स्मिथ कहते हैं : 'यह उल्लेखनीय है कि अशोक के नियमों में गोहत्या को प्रतिबंधित नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसे एक विधि-सम्मत काम माना जाता रहा था'।[6]

प्रोफ़ेसर राधाकुमुद मुखर्जी[7] स्मिथ का प्रतिवाद करते हुए कहते हैं कि अशोक ने गोहत्या पर प्रतिबंध लगाया था। प्रोफ़ेसर मुखर्जी अपने तर्क के समर्थन में अशोक के पाँचवें स्तम्भ-अभिलेख का दृष्टांत पेश करते हैं जिसमें सभी चौपाये पशुओं की हत्या को वर्जित घोषित किया गया था। मुखर्जी कहते हैं कि चौपाये पशुओं में शामिल होने के कारण गाय भी अवध्य मानी जाती थी। अभिलेख के कथन का यह पाठ दोषपूर्ण है। अभिलेख का कथन एक विशेषणयुक्त कथन है। इसमें सभी चौपाये पशुओं के बजाय केवल ऐसे चौपाये पशुओं की बात की गयी है जिनका कोई उपयोग नहीं किया जाता था या जिन्हें खाया नहीं जाता था। गाय को चौपाये पशुओं की ऐसी श्रेणी में हरगिज़ नहीं रखा जा सकता जिन्हें अनुपयोगी या अभक्ष्य माना जाता हो। यहाँ प्रोफ़ेसर विंसेंट स्मिथ की यह बात ज़्यादा

---

[5] भारत में ब्राह्मणों को दो वर्गों में बाँटा जाता है: (1) पंच द्रविड़ (2) पंच गौड़. इनमें पहले वर्ग को शाकाहारी माना जाता है, दूसरे को नहीं.

[6] स्मिथ, *अशोक*: 58.

[7] मुखर्जी, *अशोक*: 21, 181, 184.

सही प्रतीत होती है कि अशोक ने गोहत्या पर प्रतिबंध नहीं लगाया था। प्रोफ़ेसर मुखर्जी इस समस्या से यह कह कर बच निकलना चाहते हैं कि अशोक के काल में गाय अभक्ष्य मानी जाती थी और इसलिए वह प्रतिबंध के दायरे में आती थी। उनका यह कथन पूरी तरह आधारहीन है क्योंकि गाय को एक पशु ही माना जाता था और सभी वर्गों के लोग उसके मांस का सेवन करते थे। प्रोफ़ेसर मुखर्जी उक्त अभिलेख पर अपना मनगढ़ंत आशय थोपना चाहते हैं और यह दर्शाना चाहते हैं कि जैसे गोहत्या रोकना अशोक का कर्तव्य हो। ज़ाहिर है कि यह एक ग़ैर-ज़रूरी क़वायद है। गाय के प्रति अशोक के मन में कोई विशेष अनुराग नहीं था इसलिए गायों का वध रोकना उनका विशेष दायित्व भी नहीं था। अशोक का सरोकार समग्र जीवन की पवित्रता से था जिसमें मनुष्य और पशु दोनों शामिल थे। वह जीव-हत्या को रोकना अपना कर्तव्य समझता था लेकिन तभी जब ऐसा करना आवश्यक हो। अशोक ने पशुओं की बलि पर इसीलिए रोक लगाई थी।[8] उन्हें पशु-बलि की प्रथा और अनुपयोगी तथा अभक्ष्य और पशुओं को मारना भी अनावश्यक लगता था। इसे एक तथ्य की तरह देखा जाना चाहिए कि अशोक ने गोहत्या पर विशेष प्रतिबंध नहीं लगाया था। चूँकि इस विषय में वे बौद्ध मत के प्रति सम्मान रखते थे लिहाज़ा इस बात को अशोक पर दोषारोपण का आधार नहीं बनाया जा सकता।

अगर मनु की बात की जाए तो इस बात में भी कोई संदेह नहीं है कि मनु ने भी गोहत्या पर प्रतिबंध नहीं लगाया था। इसके धुर उलट मनु कुछ विशेष अवसरों पर गोमांस के सेवन को आवश्यक बताते हैं।

अगर वस्तु-स्थिति यह थी तो फिर ग़ैर-ब्राह्मणों ने गोमांस सेवन का परित्याग क्यों किया? इस संबंध में हम किसी स्पष्ट कारण की ओर तो इंगित नहीं कर सकते परंतु इसका कोई कारण तो ज़रूर होना चाहिए। मुझे लगता है कि ग़ैर-ब्राह्मणों ने इस आदत का परित्याग इसलिए किया क्योंकि वे ब्राह्मणों का अनुकरण करना चाहते थे। यह बेशक एक नया सिद्धांत हो सकता है लेकिन इसे असम्भव तो हरगिज़ नहीं कहा जा सकता। जैसा कि फ्रांसीसी लेखक गैब्रियल तार्द ने कहा है— किसी समाज के भीतर संस्कृति का प्रसार निचले वर्गों द्वारा उच्च वर्गों के तौर-तरीक़ों के अनुकरण का परिणाम होता है। अनुकरण का यह प्रवाह इतना नियमित होता है कि अपनी यांत्रिकता में वह एक प्राकृतिक नियम सरीखा दिखने लगता है। तार्द अनुकरण के कुछ नियम भी गढ़ते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित एक नियम यह कहता है कि निम्नवर्ग हमेशा उच्च वर्गों का अनुकरण करते हैं। यह बात इतनी सामान्य होती है कि इसकी वैधता पर शायद ही कोई व्यक्ति सवाल उठा सके। इस बात पर निश्चय ही कोई विवाद नहीं किया जा सकता कि ग़ैर-ब्राह्मणों में गो-पूजा का चलन और गोमांस का परित्याग ब्राह्मणों की उच्चतर जीवन-शैली के अनुकरण का परिणाम है। यहाँ इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि ब्राह्मणों ने गो-पूजा के प्रचार-प्रसार के लिए एक व्यापक प्रचार-तंत्र का भी सहारा लिया था। *गायत्री-पुराण* इस प्रचार तंत्र में एक कड़ी की तरह देखा जा सकता है। लेकिन अपने मूल रूप में इसे अनुकरण के प्राकृतिक नियम का ही एक परिणाम कहा जा सकता है। ज़ाहिर है कि इससे एक प्रश्न और उठता है : कि आख़िर ब्राह्मणों ने गोमांस का सेवन करना क्यों छोड़ दिया?

ब्राह्मण शाकाहारी क्यों बने?

निस्संदेह ग़ैर-ब्राह्मण एक युगांतरकारी प्रक्रिया से गुज़रे हैं। गोमांस खाने से लेकर गोमांस का यह निषेध किसी क्रांति से कम नहीं था। लेकिन अगर ग़ैर-ब्राह्मण केवल एक ही क्रांति के साक्षी थे तो स्वयं ब्राह्मण दो तरह की क्रांतियों से होकर गुज़रे। उनकी पहली क्रांति गोमांस का परित्याग और

---

[8] देखें, शिलालेख संख्या 1.

दूसरी क्रांति शाकाहार का वरण करना था।

इस पर शायद ही कोई विवाद किया जा सके कि यह घटना किसी क्रांति से कम नहीं थी, क्योंकि एक समय ऐसा था जब ब्राह्मण बड़े पैमाने पर गोमांस का सेवन करते थे। हालाँकि गोमांस को ग़ैर-ब्राह्मण भी बड़े चाव से खाते थे लेकिन यह व्यंजन उन्हें हर दिन नसीब नहीं होता था। गाय के लिए बड़ी क़ीमत अदा करनी पड़ती थी और ग़ैर-ब्राह्मण इतने समर्थ नहीं थे कि भोजन के लिए हर दिन गाय काट सकें। एक ग़ैर-ब्राह्मण व्यक्ति किसी धार्मिक कर्तव्य अथवा किसी देवता को प्रसन्न करने की इच्छा जैसे कुछ विशेष अवसरों पर ही यह काम कर सकता था। लेकिन ब्राह्मणों का मसला इससे कुछ अलग था। वे पुरोहित भी होते थे। कर्मकाण्डों की भरमार के उस युग में शायद ही कोई दिन ऐसा जाता हो जब गाय की बलि न दी जाती हो और ब्राह्मण किसी ग़ैर-ब्राह्मण द्वारा निमंत्रित न किया जाता हो। ब्राह्मण के लिए तो हर दिन गोमांस की दावत का दिन होता था। ब्राह्मण इसी कारण गोमांस के सबसे बड़े भक्षक बन गये थे। ब्राह्मणों का यज्ञ धर्म के आवरण में मासूम पशुओं की हत्या के अलावा कुछ और न था। यज्ञों की चमक-दमक गोमांस की इस क्षुधा को रहस्य के आवरण में छिपाने का ही दूसरा नाम था। इस भव्य रहस्यमयता का थोड़ा सा अंदाज़ा *ऐतरेय ब्राह्मण* के उन निर्देशों से लगाया जा सकता है जिनमें यज्ञ के दौरान होने वाली पशु-बलि का उल्लेख किया गया है।



कर्मकाण्डों की भरमार के उस युग में शायद ही कोई दिन ऐसा जाता हो जब गाय की बलि न दी जाती हो और ब्राह्मण किसी ग़ैर-ब्राह्मण द्वारा निमंत्रित न किया जाता हो। ब्राह्मण के लिए तो हर दिन गोमांस की दावत का दिन होता था। ब्राह्मण इसी कारण गोमांस के सबसे बड़े भक्षक बन गये थे। ब्राह्मणों का यज्ञ धर्म के आवरण में मासूम पशुओं की हत्या के अलावा कुछ और न था।

पशुओं की बलि दिये जाने से पूर्व कुछ विशेष प्रकार के कर्मकाण्डों के साथ मंत्रोच्चार भी किया जाता था। लेकिन कर्मकाण्डों और मंत्रों की यह सूची इतनी लम्बी है कि उसका यहाँ उल्लेख नहीं किया जा सकता। यहाँ बलि के मुख्य लक्षणों की एक झलक देखना पर्याप्त होगा। यज्ञ की प्रक्रिया यूप अर्थात् बलि-स्तम्भ की स्थापना से होती थी। बलि दिये जाने वाले पशु को इसी स्तम्भ से बाँधा जाता था। *ऐतरेय ब्राह्मण* में यूप की अपरिहार्यता स्पष्ट करने के बाद उसके महत्त्व की भी चर्चा की गयी है। इसमें कहा गया है[9] : 'यह यूप एक अस्त्र है। इसके शिराग्र के आठ फलक होने चाहिए क्योंकि अस्त्र (अथवा लौह-निर्मित मुगदर) के भी आठ फ़लक होते हैं। शत्रु या प्रतिद्वंद्वी पर इसका प्रहार करने से उसकी मृत्यु हो जाती है। (इस अस्त्र) के बल पर यज्ञकर्ता अपने अधीनस्थ (प्रत्येक) को वश में कर सकता है। यूप एक ऐसा अस्त्र है जो अपने शत्रु के संहार हेतु सीधा खड़ा रहता (सन्नद्ध) है। इस प्रकार के यूप को देखकर यज्ञकर्ता का शत्रु (यज्ञ में उपस्थित) रुग्ण पड़ जाता है।'

यूप की लकड़ी का चयन यज्ञकर्ता के उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। *ऐतरेय ब्राह्मण* में कहा गया है :

स्वर्ग की इच्छा रखने वाले यज्ञकर्ता को अपना यूप खदिर लकड़ी से निर्मित करना चाहिए

---

[9] *ऐतरेय ब्राह्मण* (मार्टिन हॉग) 2 : 72-74.



यह तथ्य पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि मनु की दृष्टि में मांस-सेवन निषिद्ध नहीं था। स्मृति से यह बात भी सिद्ध की जा सकती है कि मनु ने गोहत्या पर प्रतिबंध नहीं लगाया था। इस क्रम में सबसे पहला तथ्य तो यही है कि मनु-स्मृति में गाय के प्रसंग केवल उस नियमावली में ही मिलते हैं जो मनु के अनुसार स्नातकों (ब्राह्मण विद्यार्थी) पर लागू होती है।

क्योंकि देवताओं ने दैवीय विश्व पर खदिर लकड़ी के यूप से ही विजय प्राप्त की थी। इसी भाँति यज्ञकर्ता भी दैवीय विश्व पर खदिर के यूप से ही विजय प्राप्त करता है।

भोजन की प्रचुरता और तंदुरुस्ती के लिए यज्ञकर्ता को अपना यूप बिल्व लकड़ी से बनाना चाहिए क्योंकि बिल्व के वृक्ष पर हर वर्ष फल आते हैं; वह उर्वरता का प्रतीक माना जाता है क्योंकि इसका आकार प्रत्येक वर्ष जड़ों से लेकर शाखों तक बढ़ जाता है। इसी कारण इसे मोटापे का प्रतीक माना जाता है। जो व्यक्ति अपने यूप का निर्माण बिल्व की लकड़ी से करता है उसकी संतानें और पशु तगड़े हो जाते हैं ...

सौंदर्य और पवित्र ज्ञान की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को अपने यूप का निर्माण पलाश की लकड़ी से करना चाहिए क्योंकि वृक्षों में पलाश को सौंदर्य और पवित्र ज्ञान का वृक्ष माना जाता है... पलाश सभी वृक्षों की कोख होता है।

इस प्रक्रिया के पश्चात् यूप का अभिषेक किया जाता है।[10] ... पशु बलि का आयोजन इसके बाद शुरू होता है। *ऐतरेय ब्राह्मण* में पशु बलि की सूक्ष्मताओं का विस्तृत ब्योरा दिया गया है। पशु-वध के निर्देश कुछ इस प्रकार हैं :[11]

इसके पैरों को उत्तर दिशा में घुमाओ! इसकी आँखें सूर्य को समर्पित कर दो, इसकी श्वास को वायु में और जीवन को परिवेश में समाहित कर दो, और इसके श्रवण को दिशाओं में बिखेर दो, और देह को पृथ्वी में विलीन कर दो। इस प्रकार होतृ (प्रधान पुरोहित) उसे इन संसारों में अवस्थित कर देता है।

इसकी पूरी खाल को (बिना काटे) उतार लो। इसकी नाभि को काटने से पहले इसकी अंतड़ियाँ चीर कर बाहर निकालें। इसकी साँस बंद कर दें (मुँह बंद करके)। इस प्रकार वह (होतृ) पशुओं के अंतर में अपना श्वास अवस्थापित करता है।

इसके वक्ष को गरुड़ के आकार में काटें। इसकी दो भुजाओं से दो कुल्हाड़ी, अगले पैरों से दो भाले, दोनों कंधों से काश्यप बनाएँ। इसकी जंघा-संधि को अंदर से पूरी तरह तोड़ दें; इसकी दो जंघाओं से दो कवच, घुटनों से कनेर की पत्तियाँ बनाएँ; इसकी छब्बीस पसलियों को क्रमानुसार बाहर निकाले; इसके प्रत्येक अंग को सुरक्षित रख दें। इस प्रकार वह इसके समस्त अंगों से लाभान्वित होता है ...

इन तथ्यों को देखने के बाद यह कहने के लिए किसी और साक्ष्य की ज़रूरत नहीं रह जाती कि ब्राह्मण केवल गाय के मांस का ही सेवन नहीं करते थे बल्कि वे कसाई भी थे। फिर ऐसा क्यों हुआ कि इस संबंध में ब्राह्मणों का दृष्टिकोण बदल गया? आइए, इस बदलाव को दो चरणों में समझने का प्रयास करें। सबसे पहले यह पड़ताल करें कि ब्राह्मणों ने गोमांस का सेवन क्यों छोड़ा?

जैसा कि हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं, अशोक ने गोहत्या पर कोई क़ानूनी पाबंदी नहीं लगाई थी। अगर बौद्ध सम्राट इस पर कोई प्रतिबंध लगाने का प्रयास करते तब भी ब्राह्मण इसे कभी भी स्वीकार नहीं करते।

---

[10] *ऐतरेय ब्राह्मण* (मार्टिन हॉग) 2 : 74-78.

[11] *ऐतरेय ब्राह्मण* (मार्टिन हॉग) 2 : 86-87.

क्या मनु ने गोमांस का सेवन निषिद्ध घोषित किया था? अगर उन्होंने ऐसा किया होता तो ब्राह्मणों के लिए इसका पालन करना अनिवार्य होता और इससे ब्राह्मणों के रवैये में आये बदलाव को समझने में मदद मिल सकती थी। *मनु-स्मृति* का अवगाहन करने पर निम्न पद सामने आते हैं :

> 5. 46. जीवित प्राणियों को बंधन और मृत्यु के दुख न पहुँचाने वाला, (लेकिन) समस्त (प्राणियों) का हित चाहने वाला अनंत सुख का भागी होता है।
>
> 5. 47. किसी (प्राणी) को हानि न पहुँचाने वाला अनायास ही अपने विचारित, लक्षित और इच्छित को प्राप्त कर लेता है।
>
> 5. 48. जीवित प्राणियों को चोट पहुँचाए बिना कभी मांस प्राप्त नहीं किया जा सकता, और सचेतन प्राणियों को क्षति पहुँचाने से स्वर्गीय सुख (की प्राप्ति में) बाधा उत्पन्न होती है; इसलिए उसे मांस का उपभोग नहीं करना चाहिए।
>
> 5. 49. मांस सेवन के (घृणास्पद) उद्‌भव पर तथा जीवित प्राणियों को बेड़ियों में बाँधने और उनका वध करने (की क्रूरता पर) पर्याप्त विचार करने के बाद उसे मांस का सेवन पूरी तरह बंद कर देना चाहिए।

अगर इन पदों को सकारात्मक आदेशों का पर्याय मान लिया जाए तो केवल इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर भी इस तथ्य की व्याख्या की जा सकती है कि ब्राह्मणों ने मांस के सेवन का रास्ता छोड़ कर शाकाहार क्यों अपना लिया था। लेकिन इन पदों को वैधानिक शक्ति पर आधारित सकारात्मक आदेश की तरह नहीं देखा जा सकता। इन्हें या तो आह्वान माना जा सकता है या फिर ऐसा क्षेपक जिसे *मनु-स्मृति* में तब जोड़ा गया था जब ब्राह्मण शाकाहारी हो चुके थे ...।

यह तथ्य पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि मनु की दृष्टि में मांस-सेवन निषिद्ध नहीं था। स्मृति से यह बात भी सिद्ध की जा सकती है कि मनु ने गोहत्या पर प्रतिबंध नहीं लगाया था। इस क्रम में सबसे पहला तथ्य तो यही है कि मनु-स्मृति में गाय के प्रसंग केवल उस नियमावली में ही मिलते हैं जो मनु के अनुसार स्नातकों (ब्राह्मण विद्यार्थी) पर लागू होती है। इन नियमों का विवरण कुछ इस प्रकार है :

1. स्नातक को गाय का छुआ भोजन नहीं करना चाहिए।[12]
2. स्नातक को बछिया की रस्सी पर पैर नहीं रखना चाहिए।[13]
3. स्नातक को गाय के बाड़े में मूत्र-त्याग नहीं करना चाहिए।[14]
4. मल-त्याग करते समय स्नातक का मुँह गाय की ओर नहीं होना चाहिए।[15]
5. गाय के बाड़े में प्रवेश करते समय स्नातक का दाहिना हाथ नंगा नहीं होना चाहिए।[16]
6. गाय अगर अपने बछड़े को चाट रही हो तो स्नातक को इसमें बाधा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए, और न उसे इस बारे में किसी को बताना चाहिए।[17]
7. स्नातक को गाय की पीठ पर नहीं बैठना चाहिए।[18]
8. स्नातक को ध्यान रखना चाहिए कि वह गाय को कष्ट न पहुँचाए।[19]
9. अगर स्नातक अशुद्ध है तो उसे गाय को अपने हाथ से नहीं छूना चाहिए।[20]

---

[12] मनु : 209.
[13] वही : 38.
[14] वही : 45.
[15] वही : 48.
[16] वही : 58.
[17] वही : 59.
[18] वही : 70.
[19] वही : 162.
[20] वही : 142.

इन टिप्पणियों के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि मनु गाय को पवित्र पशु नहीं मानते। इस संबंध में अध्याय 3 का संदर्भ दिया जा सकता है जिसमें कहा गया है कि, 'अपने कर्तव्यों के (कठोर पालन के) लिए प्रसिद्ध और अपने पिता से वेद की धरोहर प्राप्त कर चुके स्नातक को आसन पर बैठा कर पुष्पमाला तथा गाय की भेंट (शहद के मिश्रण) से सम्मानित किया जाएगा ...'

मनु के अनुसार गोहत्या को एक गौण क़िस्म का पाप माना जाता था। इसे संज्ञेय तभी माना जाता था जब गाय की बिना किसी शुभ और पर्याप्त कारण के हत्या की गयी हो। जो भी हो, इसे किसी भी स्थिति में जघन्य या अव्याख्येय नहीं माना जाता था। इस संबंध में याज्ञवल्क्य का मत भी ऐसा ही था।[21]

इन उद्धरणों से यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मण कई पीढ़ियों से गोमांस का सेवन करते आ रहे थे। फिर उन्होंने इसका परित्याग क्यों किया? आख़िर उन्होंने गोमांस-सेवन का त्याग करने और शाकाहारी बनने का चरम रास्ता क्यों अपनाया? असल में यह दो ऐसी क्रांतियों की ओर इंगित करता है जो आपस में अंतर्गुम्फित हो गयी हैं। जैसा कि हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं, इसे उनके दिव्य स्मृतिकार मनु के प्रवचनों का परिणाम नहीं कहा जा सकता। यह क्रांति मनु और उसके निर्देशों के बग़ैर सम्पन्न हुई। ब्राह्मणों ने यह क़दम क्यों उठाया? क्या यह क़दम दर्शन से प्रेरित था? या इसे किसी रणनीति के अंतर्गत आरोपित किया गया था?

इस प्रश्न की दो व्याख्याएँ सम्भव हैं। इसकी एक व्याख्या तो यह हो सकती है कि गाय का यह दैवीकरण अद्वैत दर्शन की इस मान्यता का प्रत्यक्षीकरण था कि समूचे ब्रह्माण्ड में एक ही सर्वोच्च सत्ता व्याप्त है। इस आधार पर मनुष्यों और पशुओं का समग्र जीवन एक पवित्र विचार था।

स्पष्ट है कि यह व्याख्या किसी भी तरह आश्वस्त नहीं करती। सबसे पहली बात तो यही है कि यह व्याख्या तथ्यों के साथ मेल नहीं खाती। जीव-जगत के एकत्व के सिद्धांत का उद्‌घोष करने वाले वेदांत सूत्र (2.1.28) में यज्ञादि के अवसर पर पशु-बलि का निषेध नहीं किया गया है। दूसरे, अगर इस रूपांतरण के पीछे अद्वैत के आदर्श को मूर्त करने की इच्छा काम कर रही थी तो इसके केवल गाय पर आकर रुक जाने का कोई कारण नज़र नहीं आता। ज़ाहिर है कि इस इच्छा की परिसीमा में तो फिर सभी पशु आने चाहिए थे।

इसकी एक ज़्यादा सूक्ष्म व्याख्या[22] यह हो सकती है कि ब्राह्मणों के जीवन में यह रूपांतरण आत्मा के देहांतरण के सिद्धांत का परिणाम था। यह व्याख्या भी तथ्यों के साथ संगति प्रदर्शित नहीं करती। *बृहदारण्यक उपनिषद्* में आत्मा के देहांतरण (6.2) में विश्वास जताया गया है लेकिन साथ ही यह भी कहा गया है कि अगर कोई व्यक्ति अपने यहाँ विद्वान पुत्र का जन्म चाहता है तो इसके लिए उसे चावल तथा घी के साथ बैल या साँड़ या अन्य प्राणियों के मांस का मिश्रण तैयार करना चाहिए। आख़िर यह कैसे सम्भव है कि उपनिषदों में प्रतिपादित इस सिद्धांत का *मनु-स्मृति* के समय तक— कम से कम चार सौ वर्ष के कालखण्ड में ब्राह्मणों पर कोई प्रभाव ही न पड़ा हो। ज़ाहिर है कि इस व्याख्या को भी स्पष्टीकरण का दर्जा नहीं दिया जा सकता। तीसरी बात, अगर ब्राह्मणों ने शाकाहार का चुनाव आत्मा के देहांतरण के प्रभाव में किया तो फिर ग़ैर-ब्राह्मणों ने भी शाकाहार का रास्ता क्यों नहीं अपनाया?

मुझे लगता है कि गोमांस का सेवन छोड़ना और गोपूजा की शुरुआत करना ब्राह्मणों की एक रणनीति थी। गोपूजा का सुराग़ बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद के अंत:संघर्ष तथा ब्राह्मणवाद द्वारा बौद्ध धर्म

---

[21] *यज.* 3. 227 तथा 3. 234.
[22] कणे, *धर्म शास्त्र* 2, भाग-2 : 776.

पर प्रभुत्व जमाने की व्यूह-रचना में ढूँढ़ा जाना चाहिए। भारतीय इतिहास में बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मणवाद का अंतर्द्वंद्व एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। इस तथ्य को समझे बिना हिंदू धर्म के कई पक्षों की व्याख्या कर पाना असम्भव है। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि भारतीय इतिहास के अध्येता इस अंतर्द्वंद्व को पढ़ने से पूरी तरह चूक गये हैं। वे ब्राह्मणवाद के अस्तित्व से तो परिचित रहे हैं परंतु उन्हें इस बात का इल्म नहीं है कि इन पंथों के बीच चार सौ वर्षों तक वर्चस्व और श्रेष्ठता का एक सुदीर्घ संघर्ष भी चला था। भारत के धर्म, समाज और राजनीति पर इस संघर्ष की एक अमिट छाप पड़ी है।



गोमांस का सेवन छोड़ना और गोपूजा की शुरुआत करना ब्राह्मणों की एक रणनीति थी। गोपूजा का सुराग़ बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद के अंत:संघर्ष तथा ब्राह्मणवाद द्वारा बौद्ध धर्म पर प्रभुत्व जमाने की व्यूह-रचना में ढूँढ़ा जाना चाहिए। भारतीय इतिहास में बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मणवाद का अंतर्द्वंद्व एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। इस तथ्य को समझे बिना हिंदू धर्म के कई पक्षों की व्याख्या कर पाना असम्भव है।

यहाँ इस संघर्ष का पूरा आख्यान प्रस्तुत न करके उसके कुछ प्रमुख बिंदुओं का ही उल्लेख किया जा सकता है। एक समय भारत की अधिकांश जनता बौद्ध धर्म में विश्वास करती थी। हज़ारों वर्षों तक अधिकांश जनता के लिए यही धर्म बना रहा। ब्राह्मणवाद पर बौद्ध धर्म से पहले किसी अन्य धर्म ने इतना चौतरफ़ा आक्रमण नहीं किया था।

ब्राह्मणवाद अपने अवसान की तरफ़ बढ़ रहा था। अगर इसे अवसान न भी कहा जाए तो यह निश्चित था कि वह आत्मरक्षा की मुद्रा में आ गया था। बौद्ध धर्म के प्रसार के कारण राज दरबार और जनता के बीच ब्राह्मणों की सत्ता और प्रतिष्ठा ध्वस्त हो चुकी थी। बौद्ध धर्म के हाथों पराजित होने के बाद ब्राह्मणवाद अपनी खोई हुई सत्ता और प्रतिष्ठा दोबारा हासिल करने के लिए ऐड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहा था। जनता के मनो-मस्तिष्क पर बौद्ध धर्म का प्रभाव इतना गहरा था कि बौद्ध धर्म के अतिवादी रूपों को अपनाए बग़ैर ब्राह्मण किसी भी तरह से बौद्धों का प्रतिरोध नहीं कर सकते थे। बुद्ध की मृत्यु के उपरांत उनके अनुयायियों ने उनकी मूर्तियों और स्तूपों का निर्माण शुरू कर दिया था। ब्राह्मणों ने इस नयी प्रवृत्ति का अनुसरण करते हुए मंदिरों का निर्माण कराया और उनमें शिव, विष्णु, राम तथा कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित करने लगे। इसका उद्देश्य बुद्ध की मूर्ति-पूजा के प्रति आकर्षित जनता को अपनी ओर खींचना था। यही कारण था कि ब्राह्मणवाद में मंदिरों और मूर्तियों की कोई जगह न होते हुए भी ये चीज़ें हिंदू धर्म का अंग बन गयीं। बौद्ध यज्ञों तथा पशु-बलि, विशेषकर गाय की बलि पर आधारित ब्राह्मण धर्म को अस्वीकार करते थे। गाय की बलि के प्रति जनता के मन में एक तीव्र विरोध पैदा हो चुका था क्योंकि इस खेतिहर जनता के लिए गाय एक अत्यंत उपयोगी पशु थी। ऐसा मालूम पड़ता है कि गायों की हत्या करने के कारण जनता के मन में ब्राह्मण भी अतिथि (गोघन) की भाँति घृणा के पात्र बन गये थे। इस स्थिति में ब्राह्मणों के पास यज्ञ की पूजा-पद्धति और गाय की बलि का त्याग करने के अलावा बौद्धों से निपटने और अपनी सामाजिक हैसियत को सुधारने का कोई अन्य विकल्प नहीं रह गया था।

गोमांस का परित्याग करने के पीछे ब्राह्मणों का उद्देश्य बौद्ध भिक्षुओं के वर्चस्व में सेंध लगाना था। ब्राह्मणों का शाकाहारी बनना इसी लक्ष्य से प्रेरित था। तो ब्राह्मणों ने शाकाहार क्यों अपनाया? इसका सीधा उत्तर यह है कि शाकाहार का पल्लू पकड़े बिना ब्राह्मण अपनी वह खोई हुई ज़मीन



उन्हें शाकाहारी होने की कोई आवश्यकता ही न थी, क्योंकि बौद्ध भिक्षु तो शाकाहारी क़तई नहीं थे। इस बहु-प्रचलित विश्वास के कारण कि अहिंसा और बौद्ध धर्म में एक निकटस्थ और मूलभूत संबंध था, यह कथन कई लोगों को अस्वीकार्य लग सकता है। ... सच्चाई यह है कि बौद्ध भिक्षुओं को तीन प्रकार का शुद्ध मांस खाने की अनुमति थी। बाद में यह संख्या पाँच हो गयी थी।

हासिल नहीं कर सकते थे जो उनके प्रतिद्वंद्वी बौद्धों के अधिकार में चली गयी थी। इस संबंध में यह बात याद रखी जानी चाहिए कि बौद्ध धर्म की तुलना में ब्राह्मणवाद की सामाजिक प्रतिष्ठा को एक मामले में गहरा आघात लगा था। यह मामला पशु-बलि से जुड़ा था जो एक तरह से ब्राह्मणवाद का सार-तत्त्व थी, जबकि बौद्ध धर्म इसका प्रबल विरोध करता था। एक खेतिहर समाज में बौद्ध धर्म के प्रति सम्मान और गाय, बैलों तथा अन्य पशुओं के वध पर टिके ब्राह्मणवाद के प्रति जुगुप्सा रखना एक तरह से स्वाभाविक बात ही थी। अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को हासिल करने के लिए ब्राह्मण क्या कर सकते थे? इसका एक ही तरीक़ा था कि मांसाहार छोड़ने के साथ शाकाहार का वरण करके स्वयं को बौद्ध भिक्षुओं से एक क़दम आगे सिद्ध करना। ब्राह्मणों के शाकाहारी बनने के इस अभिप्रेत को कई तरह से सिद्ध किया जा सकता है।

अगर ब्राह्मणों को इस बात में गहरा विश्वास था कि पशु-बलि एक बुरी प्रथा है तो इसके लिए यज्ञ में पशुओं की बलि पर रोक लगाना ही पर्याप्त था। इसके लिए शाकाहारी बनने की ज़रूरत ही क्या थी! लेकिन उनके द्वारा शाकाहार का वरण करने से सिद्ध होता है कि इसके पीछे उनका एक दूरगामी आशय था। दूसरे, उन्हें शाकाहारी होने की कोई आवश्यकता ही न थी, क्योंकि बौद्ध भिक्षु तो शाकाहारी क़तई नहीं थे। इस बहु-प्रचलित विश्वास के कारण कि अहिंसा और बौद्ध धर्म में एक निकटस्थ और मूलभूत संबंध था, यह कथन कई लोगों को अस्वीकार्य लग सकता है। एक आम धारणा यह रही है कि बौद्ध भिक्षु पशुओं के मांस से परहेज़ करते थे। लेकिन यह एक मिथ्या धारणा है। सच्चाई यह है कि बौद्ध भिक्षुओं को तीन प्रकार का शुद्ध मांस खाने की अनुमति थी। बाद में यह संख्या पाँच हो गयी थी। चीनी यात्री युआन-च्वांग इस तथ्य से परिचित था। उसके अनुसार शुद्ध मांस को सान-चिंग कहा जाता था। थॉमस वाल्टर्स ने बताया है कि भिक्षु-समुदाय में मांस खाने की यह परम्परा कैसे विकसित हुई। वाल्टर की कहानी के अनुसार[23] :

> बुद्ध के समय वैशाली में सिहा नाम का एक सेनापति रहता था। सिहा ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी। वह अपने भिक्षुओं की उदार मन से सहायता करता था और उन्हें नियमित रूप से सुस्वादु सामिष भोजन कराया करता था। जब यह बात बाहर पहुँची कि भिक्षुओं को इस विशेष भोजन की आदत पड़ गयी है तो तीर्थकों ने इस चलन की कड़ी भर्त्सना की। भिक्षुओं को जब इस बात की सूचना मिली तो उन्होंने अपनी बात बुद्ध तक पहुँचाई। इस पर बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को एक जगह बुलाया और उनके सामने इस नियम की घोषणा की कि अगर वे ऐसे किसी पशु का मांस न खाएँ जिसे उन्होंने अपनी आँखों से मरते देखा हो अथवा जिसके बारे में उन्हें यह बताया गया हो कि उसका वध उनके भोजन हेतु किया गया है। लेकिन बुद्ध ने भिक्षुओं को ऐसे पशुओं का 'शुद्ध' (अर्थात् नियम-सम्मत) मांस खाने की अनुमति प्रदान कर दी जिनका वध उन्होंने अपनी आँखों से न देखा

[23] युवान च्वांग (1904), खण्ड 1 : 55.

हो या यह बात किसी अन्य के मुँह से न सुनी हो कि अमुक पशु का वध उनके भोजन के लिए किया गया है। पाली के स्रोतों तथा *स्सु-फेन* विनय से पता चलता है कि सिहा ने बुद्ध और कुछ भिक्षुओं के अल्पाहार के लिए एक बैल का कंकाल मँगाया था। इस पर निग्रंथों ने भिक्षुओं का कड़ा उपहास किया था। बुद्ध ने इसी घटना के बाद इस नये नियम का प्रतिपादन करते हुए तीन शर्तों का पालन करने पर मछली तथा मांस के सेवन को 'शुद्ध' बताया था। भिक्षुओं को जिस प्रकार का मांस खाने की अनुमति दी गयी थी उसे बाद में 'शुद्धों की त्रयी' या ' मांस के तीन शुद्ध प्रकार' कहा जाने लगा। सूक्ति के रूप में इसे 'अदृष्ट, अनसुना, संदेहातीत' कहा गया। चीनी अनुवाद में इसे कभी कभी 'अनदेखा, अनसुना और कर्ता की संदेहास्पदता से परे' कहा गया है। इसके पश्चात् भिक्षुओं के लिए दो अन्य प्रकार के पशुओं का मांस भी 'नियम-सम्मत' घोषित कर दिया गया। इस श्रेणी में ऐसे पशुओं को रखा गया था जिनकी मृत्यु प्राकृतिक कारणों से हुई हो या जिनका शिकार किसी मांसाहारी प्राणी ने किया हो। इस तरह बौद्ध धर्म में दीक्षित भिक्षु पाँच प्रकार के मांस का सेवन कर सकते थे। इसके बाद 'अदृष्ट, अनसुना, संदेहातीत' की श्रेणियों को एक ही श्रेणी में रख दिया गया। 'प्राकृतिक मृत्यु' तथा किसी शिकारी द्वारा 'मारी गयी चिड़िया' को ही *सान-चिंग* कहा गया।

चूँकि बौद्ध भिक्षुओं को मांसाहार से किसी प्रकार की दिक़्क़त नहीं थी इसलिए ब्राह्मणों के पास भी मांसाहार छोड़ने का कोई कारण मौजूद नहीं था। फिर ब्राह्मणों ने मांसाहार का परित्याग करके शाकाहार का वरण क्यों किया? इसका कारण यह था कि ब्राह्मण शेष समाज की दृष्टि में बौद्ध भिक्षु जैसे नहीं दिखना चाहते थे।

लेकिन यज्ञ की व्यवस्था और गाय की बलि का त्याग एक निश्चित सीमा तक ही असरदार हो सकता था। इसका महत्तम फल यह हो सकता था कि ब्राह्मणों को भिक्षुओं के बराबर मान लिया जाता। अगर मांसाहार के मामले में वे बौद्ध भिक्षुओं के नियमों का पालन करते तब भी उनकी स्थिति यही रहती। इससे उनकी बौद्धों पर वर्चस्व स्थापित करने की इच्छा कभी पूरी नहीं होती। बौद्धों ने यज्ञों में गाय की बलि का विरोध करके एक विशेष सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित की थी। ब्राह्मण बौद्धों की इसी प्रतिष्ठा को छीनना चाहते थे। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए एक तरह की अंधी दुस्साहसिकता ज़रूरी हो गयी थी। ब्राह्मणों के लिए ज़रूरी हो गया था कि वे एक अतिवाद का ज़वाब दूसरे अतिवाद से दें। वामपंथियों को पराजित करने के लिए दक्षिणपंथी इसी रणनीति का प्रयोग करते हैं। इस तरह बौद्धों को पराजित करने का एकमात्र ढंग यह रह गया था कि नियमों के मामले में उनसे भी ज़्यादा कट्टरता का परिचय दिया जाए और शाकाहार का वरण किया जाए।

इस थीसिस के समर्थन में एक और कारण भी दिया जा सकता है कि ब्राह्मणों ने गो-पूजा की शुरुआत, गोमांस-सेवन का परित्याग और शाकाहार का वरण इसलिए किया था क्योंकि वे बौद्धों को पराजित करना चाहते थे। गोहत्या को इसी दिन से जघन्य पाप माना जाने लगा। यह एक बहुपरिचित तथ्य है कि अशोक के अभिलेखों में गोहत्या को अपराध की श्रेणी में नहीं रखा गया था। कई लोग अशोक से यह अपेक्षा करते हैं कि उन्हें गोहत्या को निषिद्ध घोषित करना चाहिए था। प्रोफ़ेसर विंसेंट स्मिथ इस आग्रह से चकित जान पड़ते हैं, लेकिन इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

बौद्ध धर्म सामान्यत: पशु-बलि का विरोध करता था। गाय से उसे कोई विशेष अनुराग नहीं था। इसलिए गाय की रक्षार्थ क़ानून बनाना अशोक का भी विशेष दायित्व नहीं था। इस संदर्भ में ज़्यादा आश्चर्य की बात तो यह है कि हिंदू धर्म के संरक्षकों में शामिल किये जाने वाले गुप्तवंश के शासकों ने गोहत्या को *महापातक* घोषित कर दिया था जबकि हिंदू धर्म में यज्ञादि के अवसर पर गोहत्या करना एक अनुमन्य कार्य माना जाता था। जैसा कि डी.आर. भण्डारकर बताते हैं[24] :

[24] *सम आस्पेक्ट्स ऑफ़ ऐनशेंट इण्डियन कल्चर* (1904) : 78-79.

अभिलेखों से सिद्ध होता है कि ईस्वी सन् की पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में गोहत्या को जघन्यतम नीचता का कृत्य माना जाता था, और इसकी तुलना ब्रह्म-हत्या से की जाती थी। गुप्त-वंश के शासक स्कंदगुप्त के ईस्वी सन् 465 के एक ताम्र-पत्र अभिलेख में अनुदान का उल्लेख किया गया है जिसका अंत इस पद से होता है: 'इस अनुदान का अतिक्रमण करने वाले को गोहत्या, आध्यात्मिक गुरु (या)ब्रह्म-हत्या का भागी माना जाएगा। इससे पूर्व एक ऐसा ही दस्तावेज़ स्कंदगुप्त के पितामह चंद्रगुप्त द्वितीय के काल में भी मिलता है जिसमें गोहत्या को ब्रह्म-हत्या के समकक्ष रखा गया है। गुप्त संवत् के अनुसार इसका समय 93 बैठता है जो ईस्वी सन् में 412 निर्धारित होता है। यह अभिलेख मध्य भारत के साँची स्थित सुप्रसिद्ध बौद्ध स्तूप के प्रदक्षिणा-पथ की सलाखों पर उत्कीर्ण है। इसमें भी चंद्रगुप्त के एक अधिकारी के दान-पत्र का उल्लेख मिलता है जिसमें कहा गया है कि : 'इस व्यवस्था का अतिक्रमण करने वाले व्यक्ति को ... गोहत्या अथवा ब्रह्म-हत्या तथा पाँच अनंतर्य का दोषी माना जाएगा'। इस कथन का उद्देश्य दान-भूमि के उल्लंघनकर्ता को यह चेतावनी देना है कि उसे ब्राह्मण या बौद्ध समुदाय की मान्यता के अनुसार पाप का भागी माना जाएगा। बौद्ध धर्मशास्त्रों के अनुसार अनंतर्य पाँच प्रकार के महापातक— मातृहत्या, पितृहत्या, अर्हतहत्या, किसी बौद्ध की हत्या और पुरोहितों के बीच फूट डालना इत्यादि सन्निहित हैं। उल्लेखनीय है कि यहाँ ब्राह्मण धर्म के अनुयायी पर केवल दो प्रकार के महापातकों— गोहत्या और ब्रह्म-हत्या का दोषी ही मढ़ा जा सकता है। इनमें ब्रह्म-हत्या को सभी स्मृतियों में महापातक की श्रेणी में रखा गया है जब कि आपस्तम्ब, मनु तथा याज्ञवल्क्य आदि गोहत्या को केवल उपपातक की श्रेणी में ही रखते हैं। लेकिन इसे ब्रह्म-हत्या के समानांतर रखने तथा दोनों को बौद्धों के अनंतर्यों के समकक्ष रखने से यह ध्वनित होता है कि ईस्वी सन् की पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में इसे महापातकों की श्रेणी में स्थापित कर दिया गया था। इस प्रकार गौहत्या को कम से कम एक सदी पहले अर्थात् चौथी सदी के आरंभ में महापातक माना जाने लगा होगा।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि एक हिंदू राजा को गोहत्या के विरुद्ध , दूसरे शब्दों में, मनु की संहिता जैसा क़ानून क्यों बनाना पड़ा? इसका उत्तर यह है कि ब्राह्मणों को बौद्ध-भिक्षुओं के वर्चस्व का मुक़ाबला करने के लिए वैदिक धर्म का एक आवश्यक सूत्र स्थगित करना ज़रूरी हो गया था।

अगर यह विश्लेषण दुरुस्त है तो फिर यह साफ़ हो जाता है कि गो-पूजा बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म के संघर्ष का परिणाम थी। यह एक ऐसी युक्ति थी जिसके द्वारा ब्राह्मण अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को दुबारा हासिल करने का प्रयास कर रहे थे।

गोमांस का सेवन करने से निर्बल समुदाय को अस्पृश्य क्यों मान लिया गया?

ब्राह्मणों और ग़ैर-ब्राह्मणों द्वारा गोमांस का निषेध करने तथा निर्बल समुदायों के लोगों द्वारा इसका निरंतर सेवन करने से एक ऐसी स्थिति पैदा हुई जो अतीत की किसी भी परिस्थिति से भिन्न थी। यह भिन्नता इस तथ्य में निहित थी कि पहले हर कोई गोमांस का सेवन करता था लेकिन नयी परिस्थिति में एक वर्ग गोमांस का त्याग कर चुका था जबकि दूसरे वर्ग के लिए वह भोजन के एक रूप में अभी भी विद्यमान था।

यह एक ऐसी भिन्नता थी जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था। यह सबके सामने विद्यमान थी। यह समाज की एक ऐसी विभाजक-रेखा थी जो इससे पहले कभी मौजूद नहीं रही थी। लेकिन इसमें अस्पृश्यता जैसा चरम विभाजन पूर्व-निहित नहीं था। यह विभाजन एक सामाजिक भिन्नता के रूप में भी ठहरा रह सकता था। समुदाय के विभिन्न वर्गों में खान-पान की आदतें अलग अलग पाई जाती हैं। इस तथ्य के कई साक्ष्य दिये जा सकते हैं। एक वर्ग जिस चीज़ को पसंद करता है, दूसरा उसे नापसंद कर सकता है लेकिन इससे दोनों वर्गों के बीच अवरोध खड़ा नहीं हो जाता।

इसलिए इस बात के पीछे ज़रूर कोई विशेष कारण रहा होगा कि भारत में सुस्थापित समुदाय और निर्बल समुदाय के बीच गोमांस सेवन को लेकर ऐसी दीवार खड़ी हो गयी। यह अवरोध क्या हो सकता

है? इसका उत्तर यह है कि अगर गोमांस का सेवन करना एक क़िस्म का सेकुलर मसला रहा होता यानी व्यक्ति के स्वाद का मामला रहा होता तो गोमांस का सेवन करने वालों तथा इसका निषेध करने वाले लोगों के बीच यह अवरोध खड़ा नहीं होता। दुर्भाग्य से, गोमांस-सेवन को निपट सेकुलर मसला न मानकर उसे धर्म का विषय बना दिया गया। यह इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि ब्राह्मणों ने गाय को एक पवित्र पशु बना कर रख दिया जिससे उसके मांस का सेवन करना धर्मनिषिद्ध हो गया। और चूँकि निर्बल समुदाय के लोगों को धर्म-द्रोह का दोषी पाया गया लिहाज़ा उन्हें समाज के सीमांतों से परे धकेल दिया गया...

एक बार जब गाय को पवित्र घोषित कर दिया गया लेकिन निर्बल समुदाय के लोगों ने गोमांस का सेवन जारी रखा तो इन लोगों की यह नियति तय हो गयी कि वे साहचर्य के योग्य नहीं है यानी वे अस्पृश्य हैं।

इस चर्चा पर विराम लगाने से पहले यह उचित ही होगा कि इस थीसिस के संबंध में उठने वाली सम्भावित आपत्तियों पर भी ग़ौर कर ली जाए। इस थीसिस पर दो आपत्तियाँ तो साफ़ उठती नज़र आती हैं। इसका एक प्रतिवाद तो यह हो सकता है कि इस बात का क्या सबूत है कि निर्बल समुदाय के लोग मृत गाय के मांस का सेवन करते थे। दूसरा प्रतिवाद यह सम्भव है कि जब ब्राह्मणों तथा ग़ैर-ब्राह्मणों ने गोमांस का सेवन करना छोड़ दिया था तो निर्बल समुदाय के लोगों ने भी ऐसा क्यों नहीं किया? अस्पृश्यता के उद्‌भव के सिद्धांत की दृष्टि से ये प्रश्न बेहद महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए यहाँ इन प्रश्नों से दो-चार होना ज़रूरी होगा।

इनमें पहला प्रश्न प्रासंगिक होने के अलावा निर्णायक भी है। अगर निर्बल समुदाय के लोग प्रारम्भ से ही गोमांस का सेवन करते आ रहे थे तो फिर यह सिद्धांत मुँह के बल गिर जाता है, क्योंकि अगर वे शुरू से गाय के मांस का सेवन करते आ रहे थे और उन्हें इसके बावजूद अस्पृश्य नहीं माना गया तो फिर यह कहना कि निर्बल समुदाय के लोगों को गोमांस-सेवन के कारण अस्पृश्य मान लिया गया, पूरी तरह मूर्खतापूर्ण नहीं तो अतार्किक ज़रूर होगा। यहाँ दूसरा प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं तो प्रासंगिक अवश्य है। अगर ब्राह्मणों ने गोमांस का सेवन छोड़ दिया और ग़ैर-ब्राह्मण उनका अनुकरण करने लगे तो निर्बल समुदाय के लोगों को ऐसा करने में क्या दिक़्क़त थी? अगर ब्राह्मणों और ग़ैर-ब्राह्मणों द्वारा गाय को पवित्र पशु मान लेने के कारण गोहत्या को महापाप की श्रेणी में रख दिया गया तो निर्बल समुदाय के लोगों को गोमांस का सेवन करने से क्यों नहीं रोका गया? अगर गोमांस उनके लिए भी निषिद्ध कर दिया जाता तो अस्पृश्यता कभी वजूद में ही नहीं आती।

पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि उस काल में भी जब दोनों प्रकार के समुदाय— एक जगह टिक कर जीवनयापन करने वाले आदिवासी समूह और निर्बल समुदाय के लोग गोमांस का सेवन करते थे तब भी एक ऐसी व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी कि स्थापित समुदाय के लोग गाय का ताज़ा जबकि निर्बल लोग मृत गाय का मांस खाते थे। हमारे पास इस बात को सिद्ध करने का कोई साक्ष्य नहीं है कि स्थापित समुदाय के लोग कभी भी मृत गाय का मांस नहीं खाते थे लेकिन हमारे पास यह नकारात्मक साक्ष्य ज़रूर मौजूद है कि मृत गाय पर केवल निर्बल समुदाय के लोगों का ही एकाधिकार समझा जाता था। यहाँ इसके साक्ष्य के रूप में महाराष्ट्र के महाड़ों का उल्लेख किया जा सकता है ... मृत पशु पर महाड़ों का दावा माना जाता है। उनका यह अधिकार गाँव के हरेक हिंदू पर लागू होता है। इसका अभिप्राय यह है कि पशु के मर जाने पर कोई भी हिंदू उसके मांस का सेवन नहीं कर सकता। उसे मृत पशु महाड़ों को सौंपना पड़ता है। ज़ाहिर है कि यह इस तथ्य को घुमा-फिरा कर ही कहना है कि जिस समय गोमांस का सेवन आम चलन में था तो महाड़ मृत गाय का मांस खाया करते थे जबकि हिंदू गाय का ताज़ा मांस खाते थे। ऐसे में कुछ सवाल सिर्फ़ ये बच जाते हैं: क्या वर्तमान के सत्य को अतीत का सत्य भी माना जा सकता है? क्या महाराष्ट्र के इस तथ्य को भारत के सभी स्थापित आदिवासी समुदायों तथा निर्बल समुदायों का प्रारूपिक उदाहरण माना जा सकता है?

इस संदर्भ में महाड़ों के बीच प्रचलित उस परम्परा का उल्लेख किया जा सकता है जिसके अनुसार बीदर के मुसलमान राजा ने उन्हें गाँवों की हिंदू जनता के संबंध में 52 अधिकारों से लैस किया था। बीदर के शासक ने ये अधिकार केवल प्रदान किये थे। यह मानना अनुचित होगा कि इन अधिकारों की पहले-पहल रचना भी उसी ने की थी। ये अधिकार सुदूर अतीत से चले आ रहे थे। राजा ने एक तरह से इन अधिकारों की पुष्टि भर की थी। इसका अर्थ यह हुआ कि निर्बल समुदाय में मृत गाय का मांस खाने तथा स्थापित समुदाय द्वारा ताज़ा मांस खाने की प्रथा सुदूर अतीत में उत्पन्न हुई होगी। ऐसी किसी व्यवस्था का उभरना एक तरह से स्वाभाविक ही था। स्थापित समुदाय खेती और अपनी पशु-सम्पदा के बल पर अच्छी तरह जीवनयापन करता था जबकि निर्बल समुदाय एक ऐसा दरिद्र समाज था जो अपने जीवनयापन के लिए पूरी तरह स्थापित समुदाय पर निर्भर करता था। दोनों समुदायों के लिए गोमांस ही मुख्य भोजन था। चूँकि स्थापित समुदाय स्वयं पशु-सम्पदा का स्वामी था इसलिए अपने भोजन की पूर्ति के लिए वह किसी भी पशु को मार सकता था। निर्बल समुदाय के लोग यह काम इसलिए नहीं कर सकते थे क्योंकि उनके पास पशु ही नहीं होते थे। क्या ऐसे में स्थापित समुदाय द्वारा निर्बल समुदाय को चौकीदारी के बदले अपने मृत पशुओं को उठाने का अधिकार दे दिया जाना कोई अस्वाभाविक बात थी? क़तई नहीं। लिहाज़ा यह बात बेखटके कही जा सकती है कि प्राचीन काल में स्थापित तथा निर्बल— दोनों ही समुदाय गोमांस का सेवन करते थे लेकिन इनमें स्थापित समुदाय गाय का ताज़ा मांस खाता था जबकि निर्बल समुदाय मृत गाय का, और यह व्यवस्था केवल महाराष्ट्र तक सीमित न होकर एक अखिल भारतीय व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती थी।

यहाँ से देखने पर पहली आपत्ति धराशायी हो जाती है। दूसरी आपत्ति की बात की जाए तो गुप्त सम्राटों द्वारा बनाए गये क़ानून का उद्देश्य गाय के वधिकों पर नियंत्रण लगाना था। यह क़ानून निर्बल समुदाय के लोगों पर लागू नहीं होता था क्योंकि वे गाय को मारते नहीं थे बल्कि सिर्फ़ मरी हुई गाय का मांस खाते थे। उनका आचरण गोहत्या के क़ानून का किसी भी तरह उल्लंघन नहीं करता था। यही वजह थी कि मृत गाय का मांस खाने पर कभी आपत्ति नहीं उठाई गयी, और यह प्रथा अविकल चलती रही। यह मानते हुए कि अहिंसा का ब्राह्मणों तथा ग़ैर-ब्राह्मणों द्वारा गोमांस-सेवन के परित्याग से कुछ लेना देना नहीं है, फिर भी उनके आचरण में ऐसा कुछ नहीं था जिससे अहिंसा के सिद्धांत का उल्लंघन होता हो। गाय का वध करना हिंसा की श्रेणी में आता था लेकिन मृत गाय का भोजन करना हिंसा नहीं माना जाता था। इसलिए निर्बल समुदाय के लोगों को मृत गाय का मांस खाने से किसी तरह का आत्मिक क्लेश नहीं होता था। उनकी इस आदत पर न क़ानून आपत्ति उठा सकता था और न ही इसे अहिंसा का सिद्धांत ग़लत क़रार दे सकता था क्योंकि वे जो कुछ कर रहे थे वह न क़ानून का उल्लंघन करता था और न ही सिद्धांत का।

इस प्रश्न का उत्तर दो स्तरों पर दिया जा सकता है कि उन्होंने ब्राह्मणों या ग़ैर-ब्राह्मणों का अनुकरण क्यों नहीं किया। सबसे पहले, उनके लिए अनुकरण करना एक महँगा सौदा था। वे इसकी क़ीमत अदा नहीं कर सकते थे। मृत गाय का मांस उनके जीवन का मुख्य आधार था। इसके बिना वे भूखों मर जाते। दूसरे, हालाँकि शुरू में मृत गाय को उठाना उनका एक विशेषाधिकार माना जाता था परंतु अब यह उनके लिए एक कर्तव्य बन गया था। चूँकि मृत गाय के अस्थि-पंजर को ठिकाने लगाना उनका कर्तव्य बन गया था इसलिए पूर्व परिपाटी के अनुसार इस गाय का मांस खाना उनके लिए आपत्ति की बात नहीं थी।

लिहाज़ा इन प्रतिवादों से इस थीसिस की वैधता पर कोई आँच नहीं आती।

(डी.एन.झा की पुस्तक, *द मिथ ऑफ़ द होली काउ* (2009),
नवायन, नयी दिल्ली के परिशिष्ट से साभार)